[2024] 2 एस.सी.आर 935 : 2024 INSC 151

बासवराज

बनाम

इंदिरा और अन्य

(सिविल अपील संख्या 2886/2012)

29 फ़रवरी, 2024

[सी.टी. रविकुमार और राजेश बिंदल,जे.जे.]

विचारणीय मुद्दा

उच्च न्यायालय द्वारा उस स्थिति में संशोधन आवेदन को स्वीकार करना उचित हो सकता है, जिसमें वाद की प्रकृति को विभाजन से बदलकर घोषणा में परिवर्तित किया जा रहा हो

शीर्ष टिप्पणीयाँ

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 6 नियम 17 - वादपत्र में संशोधन - कब अनुमेय है - वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार, यह वाद विभाजन एवं पृथक कब्जा के लिए दायर किया गया था। - जब मामला बहस के चरण में पहुँचा, तब प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा वादपत्र में संशोधन हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें पूर्व में पारित समझौता डिक्री को शून्य एवं अवैध घोषित करने की प्रार्थना की गई। इस हेतु उन्होंने यह दलील दी कि उनकी ओर से यह चूक एवं त्रुटि के कारण पहले प्रस्तुत नहीं किया गया था। विचारण न्यायालय ने इस संशोधन आवेदन को खारिज कर दिया, किन्तु उच्च न्यायालय ने इसे स्वीकार कर लिया।- शुद्धता,

अभिनिर्धारित: संशोधन हेतु आवेदन को अस्वीकार किया जा सकता है यदि वह पूरी तरह से भिन्न, नया एवं असंगत मामला प्रस्तुत करता हो या वाद की मूल प्रकृति को बदल देता हो।-

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6 नियम 17 के अनुसार, परीक्षण प्रारंभ होने के बाद संशोधन का आवेदन तभी स्वीकार किया जा सकता है - जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उचित परिश्रम के बावजूद पक्षकार यह मुद्दा पहले नहीं उठा सका।-विचार करने योग्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि क्या ऐसा संशोधन दूसरी पक्षकार को हानि पहुँचाएगा या वाद की प्रकृति एवं स्वरूप को मूल रूप से बदल देगा, अथवा संशोधित दावे के आधार पर यदि नया वाद दायर किया जाए तो क्या वह आवेदन की तिथि पर समय-सीमा से बाधित होगा।- तथ्यों के आधार पर, मांगी गई राहत निश्चित रूप से वाद की प्रकृति को बदल देती है, जो कि स्वीकार्य नहीं हो सकती। यदि संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो यह अपीलकर्ता के लिए निश्चित रूप से हानिकारक होगा। जो कार्य सीधे तौर पर नहीं किया जा सकता, उसे परोक्ष रूप से करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।- संशोधन का आवेदन समझौता डिक्री पारित होने के 5 वर्ष बाद दायर किया गया, - जबकि किसी भी डिक्री को चुनौती देने की सीमा अवधि 3 वर्ष होती है।- समय बीतने के साथ, अपीलकर्ता के पक्ष में एक अधिकार उत्पन्न हो गया था, जिसे विलंब से दायर आवेदन के कारण छीना नहीं जा सकता।- यहां तक कि यदि किसी आधार पर संशोधन की अनुमति दी भी जाए, तब भी कोई राहत प्रदान नहीं की जा सकती, - क्योंकि संबंधित सभी पक्षकार इस वाद में न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं थे।- अतः उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश को निरस्त किया जाता है - तथा वादपत्र में संशोधन हेतु आवेदन को खारिज किया जाता है।**[पैरा 8-14]**

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 23 - समझौता डिक्री - इसे कब चुनौती दी जा सकती है:

अभिनिर्धारित: सहमति डिक्री के विरुद्ध अपील ग्राह्य नहीं होती। - इसके विरुद्ध कोई पृथक वाद भी दायर नहीं किया जा सकता।- सहमति डिक्री प्रतिषेध के रूप में कार्य करती है और बाध्यकारी होती है, जब तक कि इसे न्यायालय द्वारा दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 के प्रावधान के अंतर्गत दायर आवेदन पर निरस्त न कर दिया जाए।- सहमति डिक्री के पक्षकार के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय यह है कि वह उसी न्यायालय के

समक्ष जाए, जिसने समझौते को अभिलेखित किया था, क्योंकि इसे मूलतः पक्षकारों के बीच एक अनुबंध माना गया है, जिस पर न्यायालय की स्वीकृति की मुहर लगी होती है।**[पैरा 7]**

उदघृत निर्णयजन्य विधि

रेवाजीतू बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस और अन्य, [2009]15 एससीआर 103 : (2009) 103 एससीसी 84 - **पर भरोसा किया गया।**

विद्याबाई और अन्य बनाम पद्मलता और अन्य, [2008]17 एससीआर 505 : (2009) 2 एससीसी 409; दोंदापति नारायणरेड्डी बनाम दुग्गिरेड्डी वेंकटनारायण रेड्डी और अन्य, (2001) 8 एससीसी 115; एस्ट्राला रबर बनाम दास एस्टेट (पी) लिमिटेड, [2001] सप्ल। 3 एससीआर 68 : (2001) 8एससीसी 97; पुष्पा देवी भगत (मृत) एल.आर. के माध्यम से साधना राय (श्रीमती) बनाम राजिंदर सिंह और अन्य, [2006]

सप्ली. 3 एससीआर 370 : (2006) 5 एससीसी 566: एम. रेवन्ना बनाम अंजनम्मा (मृत), उनके विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा,(2019) 4 एससीसी 332 - संदर्भित।

अधिनियमों कि सूची:

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908

प्रमुख शब्दों की सूची

संशोधन के लिए आवेदन; उचित सावधानी; विचारण का प्रारंभ;विभाजन और पृथक कब्ज़े के लिए वाद; समझौता डिक्री;चूक और गलती से; विलंब; सहमति डिक्री

मामले की उत्पत्ति

सिविल अपीलीय अधिकारिता : सिविल अपील संख्या 2886, वर्ष 2012

कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु के दिनांक 18.08.2010 के निर्णय एवं आदेश से(डब्लू पी संख्या 82086, वर्ष 2010)

अधिवक्तागण

निशांत पाटिल, आयुष पी. शाह, विग्नेश अदित्य एस., अंकोलेकरगुरुदत्त, अधिवक्ता- अपीलकर्ता के लिए.

अशोक कुमार गुप्ता द्वितीय, शंकर दिवाते, अधिवक्ता- उत्तरदाताओं के लिए.

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

राजेश बिंदल, जे न्यायमूर्ति

1. उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश के माध्यम से, प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2/वादियों द्वारा वादपत्र में संशोधन हेतु दायर आवेदन को ₹2,000/- की लागत के अधीन स्वीकार किया गया।

2. संक्षेप में, अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों के अनुसार, प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 ने अपने दादा की पैतृक संपत्ति के विभाजन के लिए वाद दायर किया, यह कहते हुए कि संपत्ति का वास्तविक विभाजन कभी नहीं हुआ है। जब वाद अपने अंतिम चरण में था, तब प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा वादपत्र में संशोधन हेतु एक आवेदन दायर किया गया।मांगा गया संशोधन यह था कि वाद में एक अतिरिक्त प्रार्थना जोड़ी जाए,

जिसके माध्यम से दिनांक 14.10.2004 की पूर्व में पारित समझौता डिक्री को शून्य एवं अवैध घोषित किया जाए। चूंकि यह प्रार्थना पहले नहीं की गई थी, इसलिए उस पर आवश्यक न्यायालय शुल्क भी लगाने की मांग की गई।संशोधन का आधार यह बताया गया कि चूक एवं त्रुटि के कारण प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2/वादियों से घोषणा की राहत मांगना रह गया। यह भी कहा गया कि इससे प्रतिवादियों को कोई विशेष हानि नहीं होगी, क्योंकि मांगी गई राहत केवल पैतृक संपत्ति के न्यायसंगत विभाजन तक सीमित है।विचारण न्यायालय ने इस आवेदन को खारिज कर दिया। तथापि, जब इस आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई, तो उसे निरस्त कर दिया गया और वादियों द्वारा मांगा गया संशोधन, लागत के भुगतान की शर्त पर, स्वीकार कर लिया गया।

3. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में, मूल वाद संख्या 401/2003 में पारिवारिक विभाजन किया गया था, जिसे श्रीमती महादेवी एवं श्रीमती शरणम्मा (जो प्रतिवादी क्रमांक 1 शिवशरणप्पा की पत्नी एवं पुत्रवधू हैं) द्वारा दायर किया गया था, जिसमें वादियों एवं प्रतिवादियों को पक्षकार बनाया गया था।उक्त वाद में दिनांक 14.10.2004 को लोक अदालत, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, गुलबर्गा द्वारा एक समझौता डिक्री पारित की गई।इसके पश्चात, प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 ने वर्ष 2005 में पैतृक संपत्ति के विभाजन हेतु एक नया वाद दायर किया। यद्यपि इस वाद में पूर्ववर्ती समझौता डिक्री का उल्लेख किया गया था, तथापि वादियों द्वारा, उनके स्वयं के ज्ञात कारणों से, उस डिक्री को चुनौती नहीं दी गई।उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के परिणामस्वरूप वाद की प्रकृति विभाजन से बदलकर घोषणा में परिवर्तित हो गई, जो कि विधि अनुसार स्वीकार्य नहीं है।

3.1 आगे, दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6 नियम 17 के प्रावधान के अनुसार, परीक्षण प्रारंभ होने के बाद किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती। वर्तमान मामले में, वाद अंतिम चरण के लिए निर्धारित में था।

3.2 आगे यह प्रस्तुत किया गया कि समझौता डिक्री दिनांक 14.10.2004 को पारित की गई थी। दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 के

प्रावधानों के अनुसार, इसे केवल उसी न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती थी, किसी अन्य न्यायालय के समक्ष नहीं।

3.3 आगे यह भी तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता/प्रतिवादी क्रमांक 2 ने अपने लिखित बयान में स्पष्ट रूप से यह रुख अपनाया था कि जब एक समझौता डिक्री अस्तित्व में है, तब तक प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 को कोई राहत प्रदान नहीं की जा सकती, जब तक कि उस डिक्री को चुनौती न दी जाए। यह लिखित बयान अगस्त 2005 में दायर किया गया था, फिर भी प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया।वाद की संपत्ति के एक भाग के विक्रय के कारण, जुलाई 2006 में वादपत्र में संशोधन कर बाद के क्रेता को पक्षकार बनाया गया। उस समय भी इस प्रकार की राहत की मांग नहीं की गई।

3.4 आगे यह तर्क दिया गया कि संशोधन के माध्यम से मांगी गई राहत, अर्थात् समझौता डिक्री को शून्य एवं अवैध घोषित करना, अन्यथा भी समय-सीमा से बाधित थी, क्योंकि समझौता डिक्री 14.10.2004 को पारित हुई थी, जबकि संशोधन हेतु आवेदन 08.02.2010 को दायर किया गया। यहां तक कि न्यायालय शुल्क भी संशोधन आवेदन दायर करते समय ही लगाने की मांग की गई।

3.5 प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा दायर संशोधन आवेदन, दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6 नियम 17 में निर्धारित पूर्व-शर्तों को पूरा नहीं करता था, जिससे परीक्षण के अंतिम चरण में वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी जा सके। किसी प्रकार की उचित परिश्रम का उल्लेख नहीं किया गया; केवल यह कहा गया कि यह उनकी ओर से चूक थी।

3.6 समझौता डिक्री में शामिल पक्षकारों का उल्लेख करते हुए यह तर्क दिया गया कि उनमें से कुछ इस वाद में पक्षकार नहीं हैं, अतः इस आधार पर भी समझौता डिक्री को चुनौती देना ग्राह्य नहीं हो सकता।

3.7 अपने तर्कों के समर्थन में, इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया, जैसे कि **रेवाजीतु बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस और अन्य तथा विद्याबाई और अन्य बनाम पद्मलता और अन्य।**

4. इसके प्रत्युत्तर में प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह केवल एक अनजाने में हुई त्रुटि थी, जो वाद दायर करते समय तथा बाद के चरण में हो गई थी, जिसके कारण प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा संशोधन की प्रार्थना की गई। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें इस संबंध में अभिलेख पर कोई कथन उपलब्ध न हो।प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 ने पूर्व में हुए समझौता डिक्री के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया था, किंतु अनजाने में उसे शून्य एवं अवैध घोषित करने की प्रार्थना नहीं की जा सकी। इसी प्रकार, न्यायालय शुल्क भी जमा नहीं किया जा सका।इस मामले में कोई नया साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जाना है। मामला तर्क के चरण में है और केवल मुद्दों के पुनः निर्धारण से ही इस पर बहस की जा सकती है। इससे अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचा जा सकेगा और अंततः पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय होगा, जो कि केवल पैतृक संपत्ति के विभाजन की मांग कर रहे हैं।विपक्षी पक्ष को लागत देकर क्षतिपूर्ति की जा सकती है, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा भी किया गया था। अपीलकर्ता को कोई वास्तविक हानि नहीं होगी। इस प्रकार, पक्षकारों के बीच वास्तविक एवं पर्याप्त न्याय सुनिश्चित होगा।अपने तर्कों के समर्थन में, इस न्यायालय के निर्णय–**डोंडापति नारायण रेड्डी बनाम डुग्गिरेड्डी वेंकटनारायण रेड्डी और अन्य (8) तथा एस्ट्रेला रबर बनाम दास एस्टेट (प्राइवेट) लिमिटेड (9)–पर भरोसा किया गया।**

5. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख में संदर्भित प्रासंगिक दस्तावेजों का अवलोकन किया गया।

6. यह एक ऐसा मामला है जिसमें अपीलकर्ता को अनावश्यक एवं टालने योग्य मुकदमेबाजी में फँसाकर इस न्यायालय तक आने के लिए विवश किया गया है। प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा वर्ष 2005 में पैतृक संपत्ति के विभाजन हेतु वाद दायर किया गया था। वाद में स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि पक्षकारों के बीच एक समझौता डिक्री विद्यमान है।किन्तु, संभवतः प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 को दी गई विधिक सलाह के अनुसार, उक्त समझौता डिक्री के अस्तित्व के बावजूद, यदि उससे संबंधित कोई शिकायत थी, तो भी वाद में उसके संबंध में कोई प्रार्थना नहीं की गई। परिणामस्वरूप, वाद केवल साधारण विभाजन वाद ही बना रहा।अपीलकर्ता द्वारा लिखित कथन में स्पष्ट रूप से यह आपत्ति ली गई कि जब तक समझौता डिक्री को निरस्त करने की प्रार्थना नहीं की जाती, तब तक यह वाद विचारणीय नहीं है, क्योंकि उक्त डिक्री "रेस जुदिकाता पुनर्विचारित विषय)" के रूप में प्रभावी होगी। यह लिखित कथन अगस्त 2005 में दायर किया गया था।इसके बावजूद, अपीलकर्ता द्वारा इस स्पष्ट कथन के पश्चात भी, प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 ने कोई आवश्यक कदम नहीं उठाए।

6.1 वाद लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा एक संशोधन किया गया, जिसके माध्यम से प्रतिवादी क्रमांक 4 को वाद में पक्षकार के रूप में जोड़ा गया, जो वाद संपत्ति के एक भाग का क्रेता था। उक्त संशोधन दिनांक 01.07.2006 को स्वीकृत किया गया। इसके पश्चात वाद का विचारण जारी रहा। जब वाद फरवरी 2010 में तर्क के चरण में पहुँचा, तब प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा वादपत्र में संशोधन हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया गया। इस विलंबित संशोधन आवेदन के लिए जो कारण बताए गए, वे यह थे कि अनजाने में हुई चूक और त्रुटि के कारण प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 समझौता डिक्री को शून्य एवं अवैध घोषित करने के लिए आवश्यक राहत मांगने में असफल रहे, तथा वे न्यायालय शुल्क भी जमा नहीं कर सके।

7. समझौता डिक्री को चुनौती देने के संबंध में विधि पूर्णतः स्थापित है। पुष्पा देवी भगत (मृत) एल.आर. के माध्यम से साधना राय (श्रीमती) बनाम राजिंदर सिंह और अन्य में यह अभिमत व्यक्त किया गया कि–(i) सहमति डिक्री के विरुद्ध अपील विचारणीय नहीं है।(ii) कोई पृथक वाद दायर नहीं किया जा सकता।(iii) सहमति डिक्री के रूप में कार्य करती है और तब तक बाध्यकारी रहती है जब तक कि उसे आदेश 23 नियम 3 सी.पी.सी. के प्रावधान के अंतर्गत आवेदन द्वारा न्यायालय द्वारा निरस्त न किया जाए।(iv) सहमति डिक्री के विरुद्ध उपलब्ध एकमात्र उपाय यह है कि पक्षकार उसी न्यायालय के समक्ष जाए जिसने समझौता अभिलेखित किया था, क्योंकि इसे पक्षकारों के बीच हुए अनुबंध के रूप में माना गया है, जिस पर न्यायालय की स्वीकृति की मुहर लगी होती है।उक्त निर्णय के पैरा 17 का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:

"17. आदेश 23 के संशोधित प्रावधानों से जो स्थिति उभरकर सामने आती है, उसे इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है:

(i) धारा 96(3) सी.पी.सी. में निहित स्पष्ट निषेध के कारण, सहमति डिक्री के विरुद्ध कोई अपील विचारणीय नहीं है।

(ii) (ii) आदेश 43 नियम 1 के खंड (m) के विलोपन के कारण, न्यायालय द्वारा समझौते को अभिलेखित करने (या अभिलेखित करने से इंकार करने) के आदेश के विरुद्ध भी कोई अपील विचारणीय नहीं है।

(iii) (iii) आदेश 23 नियम 3A में निहित निषेध के कारण, इस आधार पर कि समझौता विधिसम्मत नहीं था, समझौता डिक्री को निरस्त करने हेतु कोई स्वतंत्र वाद दायर नहीं किया जा सकता।

(iv) (iv) सहमति डिक्री विबंधन के रूप में कार्य करती है तथा वैध एवं बाध्यकारी होती है, जब तक कि उसे उसी न्यायालय द्वारा, जिसने सहमति डिक्री पारित की है, आदेश 23 नियम 3 के प्रावधान के अंतर्गत आवेदन पर निरस्त न कर दिया जाए।"

अतः, सहमति डिक्री से बचने के लिए किसी पक्षकार के पास एकमात्र उपाय यह है कि वह उसी न्यायालय के समक्ष जाए जिसने समझौते को अभिलेखित कर उसके आधार पर डिक्री पारित की है, और यह स्थापित करे कि वास्तव में कोई समझौता हुआ ही नहीं था।ऐसी स्थिति में, वही न्यायालय यह विचार करेगा और निर्णय करेगा कि समझौता वैध था या नहीं।ऐसा इसलिए है क्योंकि सहमति डिक्री वस्तुतः पक्षकारों के बीच एक अनुबंध मात्र होती है, जिस पर न्यायालय की स्वीकृति की मुहर लगी होती है। अतः, सहमति डिक्री की वैधता पूर्णतः उस समझौते या अनुबंध की वैधता पर निर्भर करती है, जिसके आधार पर वह पारित की गई है।

8. आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के प्रावधान के अनुसार, विचारण प्रारंभ होने के पश्चात किसी संशोधन आवेदन को स्वीकार नहीं किया जाएगा, जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर न पहुँचे कि यथोचित परिश्रम के बावजूद पक्षकार उस विषय को विचारण प्रारंभ होने से पूर्व नहीं उठा सका।वर्तमान मामले में, प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत संशोधन आवेदन में यह तक नहीं कहा गया कि वाद दायर करते समय उन्होंने यथोचित परिश्रम किया था, फिर भी वे उक्त राहत को मांगने में असमर्थ रहे।उन्होंने केवल यह कहा कि यह एक अनजाने में हुई चूक थी। यह कारण स्वीकार्य नहीं है, विशेषकर तब जब विचारण अपने अंतिम चरण में हो और यह भी निर्विवाद हो कि संबंधित तथ्य प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 / वादियों के ज्ञान में पहले से ही थे।

8.1 वादपत्र में संशोधन हेतु प्रस्तुत आवेदन के प्रासंगिक अनुच्छेद निम्नानुसार उद्धृत किए जाते हैं:

> "2. कि, अनजाने में हुई चूक तथा त्रुटि के कारण वादी उक्त डिक्री को शून्य एवं अवैध घोषित करने की राहत मांगने में असमर्थ रहा तथा अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण आवश्यक न्यायालय शुल्क भी जमा नहीं कर सका, और प्रस्तावित संशोधन विवादित मामले के निर्णय हेतु अत्यंत आवश्यक है।

3.xxx

4. कि, यदि प्रस्तावित संशोधन स्वीकार किया जाता है तो इससे विपक्षी पक्ष को कोई हानि नहीं होगी, बल्कि यदि इसे स्वीकार नहीं किया गया तो प्रार्थी को भारी क्षति होगी तथा अनावश्यक मुकदमेबाजी उत्पन्न होगी। अतः न्याय के हित में प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार किया जाना न्यायोचित एवं उचित है।” (sic)

9. एम. रेवन्ना बनाम अंजनाम्मा (मृत) (विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से) एवं अन्य[११] में इस न्यायालय ने अभिमत व्यक्त किया कि यदि संशोधन आवेदन द्वारा पूर्णतः भिन्न, नया एवं असंगत मामला प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है अथवा वाद के मूल स्वरूप में परिवर्तन किया जाता है, तो ऐसे संशोधन को अस्वीकार किया जा सकता है।आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के अनुसार, विचारण प्रारंभ होने के पश्चात संशोधन का आवेदन तभी स्वीकार किया जा सकता है जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यथोचित परिश्रम के बावजूद पक्षकार उक्त विषय को पहले नहीं उठा सका।विचारण प्रारंभ होने के बाद संशोधन चाहने वाले पक्ष पर यह दायित्व होता है कि वह यह सिद्ध करे कि यथोचित परिश्रम के बावजूद वह ऐसा संशोधन पहले नहीं मांग सका। यह कोई अधिकार नहीं है।उक्त निर्णय के पैरा 7 का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:

“7. संशोधन की अनुमति अस्वीकार की जा सकती है यदि वह पूर्णतः भिन्न, नया एवं असंगत मामला प्रस्तुत करती हो या वाद के मूल स्वरूप को बदलती हो। आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. का प्रावधान वस्तुतः विचारण प्रारंभ होने के पश्चात वादपत्र में संशोधन के आवेदन को स्वीकार किए जाने पर रोक लगाता है, जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर न पहुँचे कि यथोचित परिश्रम के बावजूद पक्षकार उस विषय को विचारण प्रारंभ होने से पूर्व नहीं उठा सका।यह प्रावधान एक सीमा तक किसी भी चरण पर संशोधन की अनुमति देने के पूर्ण विवेकाधिकार को सीमित करता है। अतः, विचारण प्रारंभ होने के बाद संशोधन

<u>चाहने वाले व्यक्ति पर यह भार होता है कि वह यह प्रदर्शित करे कि यथोचित परिश्रम के बावजूद ऐसा संशोधन पहले नहीं किया जा सका।इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि संशोधन को अधिकार के रूप में तथा हर परिस्थिति में दावा नहीं किया जा सकता। यद्यपि सामान्यतः मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के लिए संशोधन की अनुमति दी जाती है,</u> तथापि न्यायालय को यह भी विचार करना आवश्यक है कि संशोधन का आवेदन सद्भावना से किया गया है या दुर्भावना से, तथा क्या इससे विपक्षी पक्ष को ऐसी हानि होगी जिसकी भरपाई मात्र धन के रूप में पर्याप्त रूप से नहीं की जा सकती।" (महत्व दिया गया)

10. प्रारंभ में वाद विभाजन एवं पृथक कब्जे के लिए दायर किया गया था। संशोधन के माध्यम से समझौता डिक्री को शून्य एवं अवैध घोषित करने की राहत भी मांगी गई। इससे निश्चित रूप से वाद की प्रकृति में परिवर्तन होता है, जो कि अनुमेय नहीं हो सकता।

11. इस न्यायालय ने **रेवाजीतू बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस** में संशोधन आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय द्वारा ध्यान में रखे जाने वाले कारकों को स्पष्ट किया है। महत्वपूर्ण कारकों में से एक यह है कि क्या प्रस्तावित संशोधन से विपक्षी पक्ष को हानि होगी, या यह वाद की प्रकृति एवं चरित्र को मौलिक रूप से बदल देता है, अथवा संशोधित दावे पर नया वाद दायर करने पर वह आवेदन की तिथि पर विधि द्वारा वर्जित होगा।

12. वर्तमान मामले में यदि संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो निश्चित रूप से अपीलकर्ता को हानि होगी। यह एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिस पर किसी भी संशोधन आवेदन पर विचार करते समय ध्यान देना आवश्यक है। विपक्षी पक्ष के पक्ष में अर्जित अधिकार को, संशोधन आवेदन दाखिल करने में हुई देरी के कारण छीना नहीं जा सकता।

12.1 इस मामले में समझौता डिक्री दिनांक 14.10.2004 को पारित हुई थी, जिसमें वादी स्वयं पक्षकार थे। वादपत्र में संशोधन हेतु आवेदन दिनांक 08.02.2010 को दायर किया गया, अर्थात् समझौता डिक्री के पारित होने के 5 वर्ष 3 माह पश्चात, जिसे संशोधन के माध्यम से चुनौती दी गई। किसी भी डिक्री को चुनौती देने की सीमा अवधि तीन वर्ष है (सीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के भाग-IV के अनुच्छेद 59 का संदर्भ लिया जा सकता है)। अतः, इस प्रकार का नया वाद दायर करना संभवतः विचारणीय नहीं होता।अर्थात, संशोधन के माध्यम से मांगी गई राहत समयबद्धता से परे थी। समय के बीतने के साथ अपीलकर्ता के पक्ष में जो अधिकार उत्पन्न हो गया था, उसे छीना नहीं जा सकता। यदि वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो इससे निश्चित रूप से अपीलकर्ता को हानि होगी। जो कार्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता, उसे अप्रत्यक्ष रूप से करने की अनुमति भी नहीं दी जा सकती।

13. इसके अतिरिक्त, विचाराधीन वाद के पक्षकारों तथा समझौता डिक्री में उल्लिखित पक्षकारों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि मूल वाद संख्या 401/2003 में वादी **– शरणम्मा @ महानंदा पत्नी बसवराज तथा महादेवी पत्नी शिवशरणप्पा नसी** – वर्तमान वाद में पक्षकार नहीं हैं। अतः, भले ही किसी आधार पर संशोधन की अनुमति दी भी जाए, तब भी समझौता डिक्री को निरस्त करने के संबंध में कोई राहत प्रदान नहीं की जा सकती, क्योंकि उस डिक्री के सभी पक्षकार वर्तमान वाद में उपस्थित नहीं हैं।

14. उपर्युक्त कारणों के आधार पर, वर्तमान अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश निरस्त किया जाता है। वादपत्र में संशोधन हेतु प्रस्तुत आवेदन खारिज किया जाता है।अपीलकर्ता को वाद व्यय प्राप्त करने का अधिकार होगा, जिसे ₹1,00,000/- (एक लाख रुपये) निर्धारित किया जाता है, जो प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 द्वारा संयुक्त रूप से या पृथक रूप से अदा किया जाएगा।उक्त

लागत की राशि अपीलकर्ता को विचारण न्यायालय के समक्ष अगली तारीख पर डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से अदा की जाएगी।

मामले का परिणाम: **अपील स्वीकृत *किया गया***

शीर्ष टिप्पणियाँ निधि जैन द्वारा तैयार *किया गया है*।

यह अनुवाद पैनल अनुवादक
मधु कुमारी के द्वारा *किया गया है*।